रूप की धारा के उस पार
कभी धंसने भी दोगे मुझे?
विश्व की श्यामल स्नेहसंवार
हंसी हंसने भी दोगे मुझे?
निखिल के कान बसे जो गान
टूटते हैं जिस ध्वनिसे ध्यान,
देह की वीणा का वह मान
कभी कसने भी दोगे मुझे?
शत्रुता से विश्व है उदास;
करों के दल की छांह, सुवास
कली का मधु जैसा निश्वास
कभी फंसने भी दोगे मुझे?
वैर यह! बाधाओं से अन्ध!
प्रगति में दुर्गति का प्रतिबन्ध!
मधुर, उर से उर, जैसे गन्ध
कभी बसने भी दोगे मुझे?

[३]

आंखें वे देखी हैं जब से,
और नहीं देखा कुछ तब से।
देखे हैं कितने तारादल
सलिल-पलक के चञ्चल-चञ्चल,
निविड़ निशा में वन-कुन्तल-तल
फूलों की गन्ध से बसे।
उषःकाल सागर के कूल से
उगता रवि देखा है भूल से;
सन्ध्या को गिरि के पदमूल से
देखा भी क्या दबके-दबके!
सभाएं सहस्रों अब तक कीं;
वैसी आंखें न कहीं देखीं;
उपमाओं की उपमाएं दीं,
एक सही न हो सकी सबसे!

[४]

स्वर के सुमेरु हे झरझरकर
आये हैं शब्दों के शीकर।

कर फैलाए थी डाल-डाल
मञ्जरित हो गई लता-माल,
वन-जीवन में फैला सुकाल,
बढ़ता जाता है तरु-मर्मर।

कानों में बतलाई चम्पा,
कमलों से खिली हुई पम्पा,
तट पर कामिनी कनक-कम्पा
भरती है रंगी हुई गागर।

कलरव के गीत सरल शतशत
बहते हैं जिस नद में अविरत,
नाद की उसी वीणा से हत
होकर झङ्कृत हो जीवन-वर।

[५]

कैसे गाते हो? मेरे प्राणों में
आते हो, जाते हो।
स्वर के छा जाते हैं बादल,
गरज-गरज उठते हैं प्रतिपल;
तानों की बिजली के मण्डल
जगतीतल को दिखलाते हो।
ढह जाते हैं शिखर, शिखरतल;
बह जाते हैं तरु, तृण, वल्कल;
भर जाते हैं जल के कलकल;
ऐसे भी तुम बल खाते हो।
लोग-बाग बैठे ही रह गये,
अपने में अपना सब कह गये,
सही छोर उनके जो गह गये,
बार बार उन्हें गहाते हो।

बीन की झङ्कार कैसी बस गई मन में हमारे।
धुल गईं आंखें जगत की, खुल गये रवि-चन्द्र-तारे।
शरत के पङ्कज सरोवर के हृदय के भाव जैसे
खिल गये हैं पङ्क से उठकर विमल विश्राव जैसे,
गन्धस्वर पीकर दिगन्तों से भ्रमर उन्मद पधारे।
पवन के उर में भरा कम्पन प्रणय का मन्द गतिक्रम
कर रहा है समम जग को सुप्ति से जो हुआ निर्मम,
हारकर जन सकल जीते जीतकर जन सकल हारे।
भर गई विज्ञान माया, कर गई आलोक छाया,
छुट गई मिलकर हृदयधन से प्रिया की प्रकृत काया,
विश्वभू ने दन्तियों के मलिनता-मद यथा झारे।

[७]

नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा बजी;
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।
खुल गये डाल के फूल, रँग गये मुख
विहग के, धूल मग की हुई विमल सुख;
शरण में मरण का मिट गया महादुख;
मिला आनन्द पथ पाथ; संसृति सजी।
जलभरे जलद जैसे गगन में चले,
अनिल अनुकूल होकर लगी है गले;
नमित जैसे पनस-आम-जामुन-फले,
स्नेह के सुने गुण-गाथ, माया तजी।

खिला कमल, किरण पड़ी।
निखर-निखर गई घड़ी।
चुने डली में सुथरे
बड़े - बड़े भरे - भरे,
गन्ध के गले सँवरे;
जादू की आँख लड़ी।
तारों में जीवन के
हार सुघर उपवन के,
फूल रश्मि के तन के,
यौवन की अमर कड़ी।
विरह की भरी चितवन
करुण मधुर ज्योति-पतन,
क्षीण उर, अलख-लेखन
आंखें हैं बड़ी बड़ी।

[६]

बातें चलीं सारी रात तुम्हारी;

आंखें नहीं खुलीं प्रात तुम्हारी।

पुरवाई के झोंके लगे हैं,

जादू के जीवन में आ जगे हैं,

पारस पास कि राग रँगे हैं,

कांपी सुकोमल गात तुम्हारी।

अनजाने जग को बढ़ने की

अनपढ़-पड़े पाठ पढ़ने की

जगी सुरति चोटी चढ़ने की;

यौवन की बरसात तुम्हारी।

आये पलक पर प्राण कि
बन्दनवार बने तुम।
उमड़े हो कण्ठ के गान,
गले के हार बने तुम।
देह की माया की जोत,
जीभ की सीप के मोती,
छन-छन और उदोत,
वसन्त-बहार बने तुम।
दुपहर की घनी छांह,
धनी इक मेरे बानिक,
हाथ की पकड़ी बाँह,
सुरों के तार बने तुम।
भीख के दिन-दूने दान,
कमल जल-कुल की कान के,
मेरे जिये के मान,
हिये के प्यार बने तुम।

[११]

कुन्द-हास में अमन्द
श्वेत गन्ध छाई।
तान - तरल तारक - तनु
की अति सुघराई।

तिमिर गहे हुए छोर
खिंची हुई तुहिन-कोर,
बन्दी है भानु भोर,
किरण मुस्कराई।

पथिक की थकी चितवन
थिर होती है कुछ छन,
चलता है गहे गहन
पथ फिर दुखदायी।

आते हैं पूजक - दल,
चुनते हैं फूल सजल,
भरती है ध्वनि से
कल वीथी, अमराई।

साथ न होना। गांठ खुलेगी, छूटेगा उर का सोना।
आंख पर चढ़े, कि लड़े, फिर लड़े;
जीवन के हुए और कोस कड़े,
प्राणों से हुआ हाथ धोना। साथ न होना।
गांठ पड़ेगी, बरछी की तरह गड़ेगी;
मुरझाकर कली झड़ेगी।
पाना ही होगा खोना। साथ न होना।
हाथ बचा जा, कटने से माथ बचा जा,
अपने को सदा लचा जा;
सोच न कर मिला अगर कोना। साथ न होना।

[१३]

फूलों के कुल कांटे, दल, बल।

कवलित जीवन की कला अकल।

विष, असगुन, चिन्ता और सोच,

उकसाये, खाये बुरे लोच,

कर गये पोच से और पोच;

मुरझे तरु-जीवन के सम्बल।

नीरस फल, मुरझाई डाली,

जलहीन, सजल लोचन माली;

पल्लव-ज्वाला उर की पाली,

सुर की वाणी फूटी उत्कल।

उठकर छवि से आता है पल
जीवन के उत्पल का उत्कल।
वर्षा की छाया की मर्मर,
गूंजी गणिका; ध्वनि, भाव सुघर;
आशा की लम्बी पलकों पर
पुरवाई के झोंके प्रतिपल।
पङ्कज के ईक्षण शरद हंसी;
भू-भाल शालि की वाल फँसी;
वह चला सलिल, खुल चली नसी;
सीझे दल इधर पसीजे फल।
कुन्द के दुग्ध के नयन लुब्ध;
विपरीत, शीत के त्रास क्षुब्ध;
व्यय के, अर्जन के, अर्थ मुग्ध;
फूलों से फल, तरु से वल्कल।
नैष्कर्म्य गया, पल्लव-वसन्त
आया कि मुस्कराया दिगन्त;
यौवन की लाली भरी, हन्त,
किशलय की कल चितवन चलदल।
खेती का, खलिहानों का, सुख
ग्रीष्म का खुला ज्योति से सुमुख,
आकांक्षा का कुसुमित किंशुक,
निर्मल मणिजलसलिला निस्तल।

हंसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।
निगह रुकी कि केशरों की वेशिनी ने कहा,
सुगन्ध-भार के होते हैं ये बहार के दिन।
कहीं की बैठी हुई तितली पर जो आंख गई,
कहा, सिंगार के होते हैं ये बहार के दिन।
हवा चली, गले ख़ुशबू लगी कि वे बोले,
समीर-सार के होते हैं ये बहार के दिन।
नवीनता की आंखें चार जो हुईं उनसे,
कहा कि प्यार के होते हैं ये बहार के दिन।

बेला

हंसी के झूले के भूले हैं वे बहार के दिन।
सलास वृन्तों के फूले हैं वे बहार के दिन।
जगे हैं सपनों में किरणों की आंखें मल-मलकर,
मधुर हवाओं के, भूले हैं वे बहार के दिन।
क़दम के उठते कहा प्रियतमा ने फूलों से,
उरों में तीरों के हूले हैं वे बहार के दिन।
पुटों में होठों के कलियों का राज़ दब न सका,
सुगन्ध से खुला, सूले हैं वे बहार के दिन।

[१७]

शशी वे थे, शश-लाञ्छन
किसीकी जान हुई;
सुकेश, जैसे अधिक
कुञ्चित आनबान हुई।
विशेषता के गले नीच की
छुरी जो चली,
गुलाब जैसा खिला,
रक्तिमाभ शान हुई।
कलेजा डोला, कली की
जो पीली रेणु उड़ी,
मगर हवा सुव्ह की
भैरवी की तान हुई।

अशब्द हो गई वीणा,
विभास बजता था।
अमिय-क्षरण नव-जीवन-
समास बजता था।
कलुष मिला, मनसिज की
विदग्धता फैली,
चल उँगलियाँ रुकीं डरकर
विलास बजता था।
उठी निगह कि कहां से
कहां हुए हम भी,
दिखा कि ज्योति की छाया
में हास बजता था।

[१६]

उनके बाग़ में बहार,
देखता चला गया।
कैसा फूलों का उभार,
देखता चला गया।

प्रेम का विकास वह,
आँखें चार हो गईं,
पड़ा रश्मियों का हार,
देखता चला गया।

मैंने उन्हें दिल दिया,
उनका दिल मिला मुझे,
दोनों दिलों का सिंगार,
देखता चला गया।

असर ऐसा कि शिला
पानी-पानी हो गई,
जवानी का पानीदार
देखता चला गया।

अमृत के घूंट वे
दुनियां ने जो पिये,
टूटी भेद की दीवार,
देखता चला गया।

अशब्द हो गई वीणा,
विभास बजता था।
अमिय-क्षरण नव-जीवन-
समास बजता था।

कलुष मिला, मनसिज की
विदग्धता फैली,
चल उँगलियाँ रुकीं डरकर
विलास बजता था।

उठी निगह कि कहां से
कहां हुए हम भी,
दिखा कि ज्योति की छाया
में हास बजता था।

उनके बाग़ में बहार,
देखता चला गया।
कैसा फूलों का उभार,
देखता चला गया।

प्रेम का विकास वह,
आँखें चार हो गईं,
पड़ा रश्मियों का हार,
देखता चला गया।

मैंने उन्हें दिल दिया,
उनका दिल मिला मुझे,
दोनों दिलों का सिंगार,
देखता चला गया।

असर ऐसा कि शिला
पानी - पानी हो गई,
जवानी का पानीदार
देखता चला गया।

अमृत के घूंट वे
दुनियां ने जो पिये,
टूटी भेद की दीवार,
देखता चला गया।

[२२]

छाये आकाश में काले-काले बादल देखे,
झोंके खाते हवा में सरसी के कमल देखे।
कानों में बातें बेला और जुही करती थीं,
नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे।
दिल की बुझने के लिए नर्म-नर्म मिट्टी पर,
टूटते बाज जैसे लावों के दङ्गल देखे।
किसान खेतों में, लड़के अखाड़ों में आये,
बारहमासी गाती हुई लड़कियों के दल देखे।

[२३]

स्नेह की रागिनी बजी
देह की सुर-बहार पर,

वर विलासिनी सजी
प्रिय के अश्रुहार पर।

नयन हो गये हैं वे
अयन जिनका खो गया,

सुख के शयन के लिए
आये हैं असि की धार पर।

ओस से धुल गई कली,
रवि की आंख खुल गई,

तरुण मूर्छना जगी
विश्व के तार - तार पर।

[२४]

अपने को दूसरा न देख,
दूसरे को अपना न कह।
सपने को कल्पना न मान,
कल्पना को सपना न कह।
आंख की आन के लिए
आन की आँख से गुज़र,
तपने को बैठना सही,
बैठने को तपना न कह।
जैसे हुबाब गांठ बांध,
जैसे गुलाब गांठ खोल,
आंख के लगने से सुघर
आंख का तू झपना न कह।

[२५]

किरणें कैसी - कैसी फूटीं,
आंखें कैसी - कैसी तुलीं।
चिड़ियां कैसी - कैसी उड़ीं,
पांखें कैसी - कैसी खुलीं।
रङ्ग कैसे - कैसे बदले,
छाये कैसे - कैसे बादल,
बूंदें कैसी - कैसी पड़ीं,
कलियां कैसी - कैसी धुलीं।
भाई भतीजों के सङ्ग,
नैहर को आई हुई,
सहेलियां कैसी - कैसी
बग़ीचों में मिली - जुलीं।
कैसे - कैसे ग़ोल बांधे,
कैसे - कैसे गाने गाये,
छड़ियों ऐसी कैसी - कैसी
कड़ियों में हिली - डुलीं।

[२६]

जीवन-प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा,
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा।
बांधी थी मूठ मैंने सञ्चय की चिन्तना से,
मुद्रा दरिद्र की है, तुमने किया इशारा।
तन्द्रा से जागरण पर क्षण-क्षण संवारते हो,
आओ, तुरीय में प्रिय मृदु कण्ठ से पुकारा।
वीणा- विनिन्दित स्वर सुनकर प्रखर-प्रखरतर,
तोड़ी प्रसक्ति मैंने, छोड़ी विराम-धारा।

[२७]

कहां की मित्रता, वे हंसके बोले,
न कोई जब कि दिल की गांठ खोले।
बुरा दुश्मन से है जो जी को भाया,
खरा कांटा कली की आंख तोले।
सफाई कट गई है चांद की भी,
जुही के उसने जो जोबन टटोले।
गई पत देवतापति की कि उसने
प्रिया मीरा को विष के घूंट घोले।

[२८]

नये विचारों के संसार में आया है समी।
सही, चढ़ाव को उतार से लाया है समी।
पड़े थे पैरों-तले जो उन्हें किया है खड़ा,
शरीर कैसा कि रग-रग में समाया है समी।
शराब लोहे की ऐसी पिलाई है उसने,
कि चांदी-सोने की भी आंखों को भाया है समी।
तरङ्गें और बढ़ीं और उमङ्गें और आईं,
जवानो, आज बुड्ढे-बुड्ढे पर छाया है समी।

[२६]

प्रभु के नयनों से निकले कर
ज्योति के सहस्रों कोमल शर।
हर गये धरा के व्याध-शत्रु,
बह चली अमृत-जल की शतद्रु;
जीवन के मरु का छाया-तरु
लहराया, उत्कल-जल निर्झर।
पड़ती हैं किरणें मस्तक पर,
जग का सुख जैसे व्याकुलतर;
सामने दूर विस्तृत सागर
स्थिर है शान्ति का स्पर्श निर्जर।
चूमते कृपा का कर चलते,
नर बातें करते हैं छलते,
जग के जीवन से न संभलते
इस तरु-पत्रों की पृथ्वी पर।

[३०]

आये हो आस के, देखते हो भरकर;
रङ्ग के रूप के, रहते हो हरकर।
सामने बैठे हो, दीपक जलता है;
प्रिया की जोत से, जीवन चलता है;
छाये हो ऐ किसलय पतझर से झरकर।
जलधि में तरी चली है वेग से;
पवन मन्द - मन्द मिला है नेग से;
जीवन पाते हो जीवन से तरकर।

[३१]

फूल से चुन लिया ज्योति का वर अमर;
बात से सुन लिया जीवन है नश्वर।
व्यर्थ उधेड़बुन, लक्ष्य पर आँखें हैं;
चलती है हवा, अचल पांखें हैं;
खोल दिया हृदय, बहता है निर्झर।
गुनगुनाए जा, धुन सुनाये जा;
कल जो है मरना, तू कलपाये जा;
ताल से जो तुला, रहेगा स्वर सुघर।
आंखों में आ गये, नभ पे छा गये;
सबको भा गये, खोया जो पा गये;
पाठ पुराना है, रहा सुनाना भर।

[३२]

बन्दीगृह वरण किया; जनता के हृदय जिया।
वहिर्जगत के निर्मम हरने के लिए नियम
साधन कितना उत्तम किया, जला दिया दिया।
उसका निर्मल प्रकाश करता है तिमिरनाश,
नारीनर ने सहास ज्योतिर्मय अमृत पिया।
गीत से ध्वनित अन्तर, फैला फेनिल कल स्वर,
सत्य का तरङ्ग-मुखर रहा सुघर वही जिया।
प्राणों में परम स्पन्द, भाषा में सुषम छन्द,
भरा चरण-गमन-मन्द जीवन विष-विषम-लिया।

[३३]

जिसको तुमने चाहा, आंख से मिला।
धूल से छुटा, उठकर फूल से खिला।
ओस लाज की भरी, आकाश की परी,
उड़ी हुई थककर पृथ्वी पर उतरी,
रात फूल से जो की बात, उर हिला।
रवि के कर गही बांह, वह चढ़ी गगन,
जहां तक विचरने को विचरी सनयन,
निस्तरङ्ग एक रूपरङ्ग से झिला।

मन में आये सञ्चित होकर,
हम जग के जीवन से रोकर।
भव के सागर के स्रोत प्रखर,
होते हैं नीचे से ऊपर,
कितनी भूमि के नेमि-प्रस्तर,
बेबस घबराये धो-धोकर।
मेघों से मडलाये ऊपर,
छाये दिग्-देश-काल प्रान्तर;
गाये वज्र के घोरतर स्वर,
हो गये शून्य में लय खोकर।
बह गया युगों का अन्तराल,
ऋतुपुष्पों की शोभा सनाल,
ग्रह-उपग्रह के उन्मन विकाल
मग में हम जागे हैं सोकर।
हटकर छुटकटकर जो उत्कल
होती है भूमि, उपल-कंवल,
जग के उर्वर मरु का कृपिफल
जीवन में काटेंगे बोकर।

[३५]

बाहर मैं कर दिया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ।
ऊपर वह बर्फ गली है, नीचे यह नदी चली है;
सख्त तने के ऊपर नर्म कली है;
इसी तरह हर दिया गया हूँ। बाहर मैं कर दिया गया हूँ।
आंखों पर पानी है लाज का, राग बजा अलग अलग साज़ का
भेद खुला सविता के किरण-व्याज का;
तभी सहज वर दिया गया हूँ। बाहर मैं कर दिया गया हूँ।
भीतर, बाहर; बाहर, भीतर; देखा जब से, हुआ अनश्वर;
माया का साधन यह सस्वर;
ऐसे ही घर दिया गया हूँ। बाहर मैं कर दिया गया हूँ।

आने - जाने से पहले, कैसे तुम दहले ?
शायद अपमान किया किसीने,
या तुमको जान लिया किसीने,
अथवा आने न दिया किसीने,
कैसे इस पर कोई रह ले ?
हाथ मारते फिरें, कहां के हैं ?
ग़फ़लत से वे घिरें, जहाँ के हैं;
अपनी तरणी तिरें, यहाँ के हैं;
इनसे जैसी चाहे, कह लें।
हमारा उसूल सभीको पसन्द,
हमारी गली न खुला कोई बन्द,
हमारी किताब का न टूटा न छन्द,
कैसे फिर कोई यह सह ले ?

सबसे तुम छुटे और आँखों पर आये,
फूलों के, सुघर-सुघर शाखों पर छाये।

तुम्हें न खो दे, मन में शङ्का की रेखा
उठती है आलस के बल, तुमने देखा;

वंसी के रजनी-दिन राग अलापे अनगिन;
छाया के मलिन-मलिन छल पर मडलाये।

पापों के शुद्धिकरण चारुचरण धोये,
तुम्हीं अखिलवेश-चरण विश्व-शरण रोये,

रथ के पथ पर पैदल, अपनी अञ्जलि का जल,
भिक्षा से ईश-कमल गन्ध-भरे भाये।

काले - काले वादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे-कैसे नाग मडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।
विजली फन के मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सरसर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल।
पुरवाई की हैं फुफकारें, छन-छन ये विस की बौछारें,
हम हैं जैसें गुफा में समाये, न आये वीर जवाहरलाल।
महगाई की वाढ़ वढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नङ्गे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे हम वच पायें निहत्थे, वहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

[३६]

टूटी बाँह जवाहर की,
रनजित-लट छूटी पण्डित की।
लोगों की निधि विधि ने लूटी,
क़िस्मत फूटी पण्डित की।
विद्या का गया सहारा,
गीत का गला भी मारा,
कोई भी न ला सका रन
लछमन की बूटी पण्डित की।
कबसे ये दलबादल घेरे,
यह बिजली आँख तरेरे,
झंडे ले लेकर निकलीं
थी और बहूटी पण्डित की।

मृत्यु है जहाँ, क्या वहाँ विजय.?
करती है क्षिति जीवन का क्षय।

सुख के उत्सव का चटुल रङ्ग,
जैसे जल पर पङ्कज विभङ्ग,

नभ के चरणों के तल मर्दित,
आलय से हो जाते हैं लय।

केशर शर, यह कलिका निपङ्ग,
भोग के नहीं साधन-प्रसङ्ग,

तरु की तरुणी के तीर तीक्ष्ण,
छूते चुभते हैं निःसंशय।

माया का सुन्दर चित्र जाल,
जो सरल वही देखा अराल,

जग की मिथ्या से छुटने को
सत्य भी सदा भ्रम है परिचय।

टूटी बाँह जवाहर की,
रनजित-लट छूटी पण्डित की।
लोगों की निधि विधि ने लूटी,
क़िस्मत फूटी पण्डित की।
विद्या का गया सहारा,
गीत का गला भी मारा,
कोई भी न ला सका रन
लछमन की बूटी पण्डित की।
कबसे ये दलबादल घेरे,
यह बिजली आँख तरेरे,
झंडे ले लेकर निकलीं
धी और बहूटी पण्डित की।

मृत्यु है जहाँ, क्या वहाँ विजय ?
करती है क्षिति जीवन का क्षय।

सुख के उत्सव का चटुल रङ्ग,
जैसे जल पर पङ्कज विभङ्ग,

नभ के चरणों के तल मर्दित,
आलय से हो जाते हैं लय।

केशर शर, यह कलिका निषङ्ग,
भोग के नहीं साधन-प्रसङ्ग,

तरु की तरुणी के तीर तीक्ष्ण,
छूते चुभते हैं निःसंशय।

माया का सुन्दर विछा जाल,
जो सरल वही देखा अराल,

जग की मिथ्या से छुटने को
सत्य भी सदा भ्रम है परिचय।

क्या दुःख, दूर कर दे बन्धन,
यह पाशव पाश और क्रन्दन।
विष से जर्जर कर विषय, अनल
त्याग की जला निःशिख अचपल,
हों भस्म स्वार्थ के दुष्प्रसङ्ग,
देख लें विश्व यह अभिनन्दन।
यह देख दाव में छिपी आग,
साधन घर्षण कर, जाग जाग,
मोह के तिमिर में मिहिरसदृश
तू ज्योतिर्मय जन, कर वन्दन।
दीर्घता देहदेश की छोड़,
मिथ्या अपनापन, मुंह मरोड़,
केवल चेतन तू जहाँ, वहीं
मेरा-तेरा तन-मन धन-जन।

चलते पथ, चरण वितत,
दीप निभा, हवा लगी,
कहाँ रहे छिपे हुए ?
बाँह गही, भाग जगी।

नभ के अङ्गण में शशि,
ज्योत्स्ना की मायामसि
उड़ी, तमिस्रा की रक्षा की
राखी जो बँधी।

पहला उद्देश गया,
तुम्हारा ही रहा नया,
चलना किस देश कहाँ,
पीछे लगी सहज रागी।

बिजली की जोत राग
गाये हैं, भरे फाग,
टूटे मन्दिर में आ रहे,
प्रात किरण रँगी।

शान्ति चाहूँ मैं, तुम्हारा दुःखकारागार है जग।
हार भूला, नील-नभ तरु, सृष्टि भूली, सहज जगमग।
हुआ सूना हृदय दूना, याद आया चरण-छूना,
कामना की रही बाक़ी माल-पूँजी ले गये ठग।
आँखड़ियों की सजी काया कुछ नहीं, विज्ञान आया,
ओस के आँसुओं रोये, दरस करने चल पड़े पग।

आरे, गङ्गा के किनारे
झाऊ के वन से पगडंडी पकड़े हुए
रेती की खेती को छोड़ कर; फूंस की कुटी;
बाबा बैठे झारे - बहारे।
हवाबाज़ ऊपर घहराते हैं,
डाक-सैनिक आते जाते हैं,
नीचे से लोग देखते हैं मन मारे।
रेलवे का पुल बँधा हुआ है,
अपना दिल है जहाँ कुआ है,
उठने को आँख झपी, बैठे बेचारे।
पंडों के सुघर - सुघर घाट हैं,
तिनके की टट्टी के ठाट हैं,
यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं,
कहते हैं, कितने तारे!
बाबा साधक हैं और कड़े भी हैं,
खारुए की पोथियाँ पढ़े भी हैं,
आँखों में तेज है, छाया है,
उस छवि की गेह सिधारे।

भीख मागता है अब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर।
एक आँख आज के बानिज की
पराधीन होकर उसपर पड़ी;
कहा कला ने, कल का यह वर।
एक आँख शिक्षा की हेठी से
देखने लगी उसे अमेठी से,
कहा, खुबलकर छोटा भूधर।
एक आँख कारीगर की गड़ी,
कहा, आदमी की यह है छड़ी,
खेदे कोई इसको लेकर।
एक आँख पड़ी महाराज की,
कहा, देख ली है स्तुति व्याज की,
मानव का सच्चा है यह घर।
एक आँख तरुणी की जो अड़ी,
कहा, यहाँ नहीं कामना सड़ी,
इससे मैं हूँ कितनी सुन्दर।

वेश - रूखे, अधर - सूखे,
पेट - भूखे, आज आये।
हीन-जीवन, दीन-चितवन,
क्षीण आलम्बन बनाये।
तिमिर ने जब घेरकर
तुमको प्रकाश हरा तुम्हारा,
इस धरा के पार खोला द्वार
कृति ने, विश्व हारा;
जग गई जनता, हुए लुण्ठित
मुकुट, जीवन सुहाये।
प्यास पानी से बुझाने को
बुझाई रक्त से जब,
आँख से आया लहू,
लोहा बजाया शक्त से जब,
रुण्डमुण्डों से भरे हैं खेत
गोलों से बिछाये।

तू कभी न ले दूसरी आड़,
शत्रु को समर जीते पछाड़।
सैकड़ों फलेंगे फूलेंगे,
जीवन ही जीवन भर देंगे,
झरनें फूटेंगे उबलेंगे,
नर अगर कहीं तू बन पहाड़।
तेरी ही चोटी पर चढ़कर
देखेंगे लोग दृश्य सुन्दर,
उतरेंगे रवि-शशि के शुचि कर,
नीचे से ऊँचा सर उभाड़।
हिम का किरीट होगा उज्वल,
बदलेंगे रङ्ग - पीठ प्रतिपल,
जल होगा जीवन का सम्बल,
पदतल शत सिहों की दहाड़,

छला गया, किरनों का प्रकाश कैसे करे ?
विरज नहीं, रज से रजत-हास कैसे करे ?
सरोरुहों के उरोजों की चाल बल खाया
धवल-पुरी-पुर-परिसर विलास कैसे करे ?
अवल दशा, दबकर, रूप देखते रहते,
गिरते - गिरते गिरकर अट्टहास कैसे करे ?
रहे प्रभास, मगर उच्छला कला, खरतर,
तरुण-नयन वय में शर-निवास कैसे करे ?

[४६]

विनोद प्राण भरे,
आनबान रहने दे।

मिटा न दे जबतक तीर,
शान रहने दे।

कहींकी खूबियों से
नाज़ का पड़ा पाला,

सितार रहने दे,
आलाप - तान रहने दे।

मिला गला, जनगीतों का
राग जो बदला,

धुली वितान-सुकुल-सुकुल
कान रहने दे।

बुराई छोड़, किसीकी
भलाई कर या न कर,

ज़मीं रहने दे, जा रहने दे,
जान रहने दे।

[५०]

चढ़ी हैं आँखें जहाँ की, उतार लायेंगी।
बढ़े हुओं को गिराकर सँवार लायेंगी।
समाज ने सर उठाया है, राज़ बदला है,
सलास वे पतझर से बहार लायेंगी।
लड़ी हैं जब समझौता नहीं हुआ उनका,
बदलती लोगों को सुख का सिंगार लायेंगी।
युगों का ज़ोर उन्हींका रहा, वही जीतीं,
निदाघ से बरखा की फुहार लायेंगी।
उगी खेती लहराई, हवा और बदली है,
मिले बढ़े चलें, ऐसा विचार लायेंगी।

[५१]

वह चलने से तेरे छुटा जा रहा है।
इसी सोच से दम घुटा जा रहा है।
तेरे दिल की क़ीमत चुकाने से पहले,
तरह पानी की वह फुटा जा रहा है।
पता उसकी दुनिया का कैसे लगायें,
सितारे - सितारे टुटा जा रहा है।
यह क्या मौज है रूप से, रंग से भी,
लिये जा रहा है, लुटा जा रहा है।
ललककर किसीसे कभी जो न लिपटा,
भरा धान जैसा कुटा जा रहा है।

[५२]

किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं।
दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं।
जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने
वही सूत तोड़े लिये जा रहे हैं।
छिपी चोट की बात पूछी तो बोले
निराशा के डोरे सिये जा रहे हैं।
ज़माने की रफ़्तार में कैसा तूफ़ां,
मरे जा रहे हैं, जिये जा रहे हैं।
खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो,
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं।

[५३]

मुसीबत में कटे हैं दिन,
मुसीबत में कटीं रातें।
लगी हैं चाँद - सूरज से
निरन्तर राहु की घातें।
जो हस्ती से हुये हैं पस्त,
समझे हैं वही क्या है,
गुज़रती ज़िन्दगी के साथ
हरकत से भरी बातें।
कड़ाई से दबी है कोमला,
यह माजरा, सच है—
झपटने के लिये बलि पर
सिकुड़ती हैं बली आंतें।
सुखों की सोई दुनियां में
जगी जो वह भी ग़फ़लत है,
कहां हैं गेह की बातें,
कहाँ हैं स्नेह की मातें।

गिराया है ज़मी होकर, छुटाया आसमां होकर।
निकाला, दुशमनेजां; और बुलाया, मेहरबां होकर।
चमकती धूप जैसे हाथवाला दबदबा आया,
जलाया गरमियां होकर, खिलाया गुलसितां होकर।
उजाड़ा है कसर होकर, बसाया है असर होकर,
उखाड़ा है रवां होकर, लगाया बाग़बां होकर।
घटा है भाप होकर जो, जमा है रश्कोबू होकर,
अधर होकर जो निकला है, समाया है समा होकर।
चढ़ाया है निडर होकर, उतारा है सुबर होकर,
रमा होकर रमाया है, सताया है अमा होकर।
बड़ों को गिरने से रोका, ऐसी आँखें लड़ाई हैं,
सभी उपमाएँ ले ली हैं, न होकर, निरुपमा होकर।

नहीं देखे हैं पर केवल, कवल से छुटते शर देखे।
अँधेरे में जगे हैं रात, दिन को कर-निकर देखे।
उतरती धूप से खुलकर कली की ओस से चमके
न-चूमे बिम्ब विहगों के सुकेशा के अधर देखे।
जिन्होंने ठोकरें खाईं ग़रीबी में पड़े, उनके
हज़ारों-हा हज़ारों हाथ के उठते समर देखे।
गगन की ताक़तें सोईं, जहां की हसरतें रोईं,
निकलते प्राण बुलबुल के बग़ीचे में अगर देखे।

अलख किरनें अँधेरे के उपद्रव से निकलती हैं,
कृपा के जैसे कोमल कर नहीं देखे, मगर देखे।
नहीं झेली झिली ऋतु की प्रगति, हम देखते आये,
विजन देखे, विपिन देखे, बसे हँसते नगर देखे।
जमाते रह गये लेकिन ज़माने को नहीं भाये
यहाँ कितने अजर देखे, वहां कितने अमर देखे।
पुराने घाट पर चढ़ता नया पानी बदलता है
निकलते शब्द जैसे निस्तला के सरवसर देखे।

पड़े थे नीद में उनको प्रभाकर ने जगाया है।
किरन से खोलदीं आँखें, गले फिर फिर लगाया है।
हवा ने हल्के झोकों से प्रसूनों की महँक भर दी,
विहङ्गों ने द्रुमों पर स्वर मिलाकर राग गाया है।
तितलियाँ नाचती उड़ती रंगों से मुग्ध कर-करके,
प्रसूनों पर लचककर बैठती हैं; मन लुभाया है।
प्रवासी दूर के परिचित किसीसे मिलने को आतुर
प्रकृति ने स्वर्ण-केशर से वसन जैसे रंगाया है।
कलोलों के भरे, देखा, सकल जलचर बराती हैं,
नदी का सिन्धु ने संवेद से गौना कराया है।

अगर तू डर से पीछे हट गया तो काम रहने दे।
अगर बढ़ना है अरि की ओर तो आराम रहने दे।
बिगड़कर बनते और बनकर बिगड़ते एक युग बीता,
परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे।
अगर ज़र्रे को ज़र कर तू, बड़े मूज़ी को सर कर तू,
ज़माने से बिगड़कर चलता हो वह नाम रहने दे।
न पड़ जाये तो क्या परदा; न गड़ जायें तो क्या आँखें,
धनी से वाम होने को धनी का धाम रहने दे।
नज़ीरें क्या पुरानी दे रहा है, फ़ैसला किसका ?
पुराने दाम रहने दे, पुराने याम रहने दे।

आँख के आँसू न शोले बन गये तो क्या हुआ?
काम के अवसर न गोले बन गये तो क्या हुआ?
जान लेने को ज़मीं से आसमां जैसे बना,
काठ के ठोंके न पोले बन गये तो क्या हुआ?
पेच खाते रह गये ग़ैरों के हाथों आजतक,
पेच में डालें, न चोले बन गये तो क्या हुआ?
नींद से जगकर बला की आफ़तों के सामने
जी से घबराये, न तोले बन गये तो क्या हुआ?
धार से निखरे हुए ऋतु के सुहाये बाग़ में
आम भरने के न झोले बन गये तो क्या हुआ?

भेद कुल खुल जाय वह
सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय जो
पूँजी तुम्हारी मिल में है।
हार होंगे हृदय के
खुलकर सभी गाने नये,
हाथ में आ जायगा
वह राज़ जो महफ़िल में है।
तर्स है यह, देर से
आँखें गड़ीं शृङ्गार में,
और दिखलाई पड़ेगी
जो गुराई तिल में है।
पेड़ टूटेंगे, हिलेंगे,
ज़ोर की आँधी चली,
हाथ मत डालो, हटाओ
पैर, बिच्छू बिल में है।
ताक़ पर है नमक-मिर्चा,
लोग बिगड़े या बने,
सीख क्या होगी पराई
जब पिसाई सिल में है।

राह पर वैठे, उन्हें आवाद तू जबतक न कर।
चैन मत ले, ग़ैर को बरवाद तू जवतक न कर।
पैर उखाड़े रह क़ज़ा के, हाथ जवतक चलता है,
वैठने मत दे किसीको, याद तू जवतक न कर।
रोक रहज़न को प्रगति का, फेर से, बाधक जो है
दरबदर भटका उसे, मर्याद तू जवतक न कर।
अडिग डग से भूमि जल-नभ पर फिरे जीवन नहीं,
दुर्दशा को सिंहिनी की माद तू जवतक न कर।
बदल शिक्षा-क्रम, बना इतिहास सच्चा, दम न ले,
सज्जनों को प्रगति-पद प्रहलाद तू जवतक न कर।
सेठ होने को किसीकी गठरियाँ लेकर न चल;
मान है अपमान को मनुजाद तू जवतक न कर।
स्वर विवादी ही लगा, गाना सुनाना हो जहाँ,
साथ से हर वाद का उन्माद तू जबतक न कर।
सूत सुलझा मत विदेशी देश के खातिरजमा,
हाथ धो ले, वयन को अपवाद तू जवतक न कर।
उलट तख्ता उपज की ताक़त बढ़ाने के लिए,
डाल मत खेतों में अपनी खाद तू जवतक न कर।
वेबुलाये आ विराजे, आजतक सबने कहा;
बीन मत छू ज्ञान की, उस्ताद तू जवतक न कर।
घर बसाने को. समझ तू, अपनों ने चरके दिये;
नभ बना रह, रहन की बुनियाद तू जवतक न कर।

[६१]

विजयी तुम्हारे दिशामुक्ति से प्राण।
मौन में सुघरतर फूटे अमर गान।
ताप से तरुण आकाश घहरा गया,
घनों में घुमड़कर भरा फिर स्वर नया,
विद्युत्-प्रभा कौंधती रही निर्भया,
सृष्टि ने सानन्द किया नव-जल-स्नान।
कार्य पर शक्ति पाकर सभी जन बढ़े,
अर्थ के गर्त में सर्प जैसे पड़े
धनिक जन सजग होकर हुए हैं खड़े,
देश को दे रहे हैं देह - धन - मान।

जल्द-जल्द पैर वढ़ाओ, आओ, आओ।
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोवी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट विछाओ।
यहां जहां सेठ जी वैटे थे
वनिये की आँख दिखाते हुए,
उनके ऐंठाये ऐंठे थे
धोखे पर धोखा खाते हुए,
वैंक किसानों का खुलाओ।
सारी सम्पत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की वेने,
जनता जतीय वेश की हो,
वाद से विवाद यह ठने,
काँटा काँटे से कढ़ाओ।

राजे दिनकर जैसे,
बिचरे नर पृथ्वी पर,
सकल-सुकृत-भार-भरण
हुए, वरण लाजे।
ऋतु के सहकार तरुण
किसलय-दल-मञ्जरि-फल,
सुषमा-सुख-शील-नील
जल - कुवलय छाजे।
अनिला के छूते पल
हुये सकल सुमन चपल,
शुक - सारिक - पारावत
भ्रमरावलि गाजे।
वधू मधुर-गति यमुना-
जल लेकर चली, मिली
ललित अप्सरा अपरा-
जिता नयन राँजे।

अन्तस्तल से यदि की पुकार,
सब - सहते साहस से बढ़कर
आयेंगे, लेंगे भी उबार।
विज्ञान झुकायेगा आँखें;
वायुयान की पीछे आँखें;
सुलझेंगी मन - मन की माखें;
ज्योतिर्जग का होगा सुधार।
सादा भोजन, ऊँचा जीवन
होगा चेतन का आश्वासन;
हिंसा को जीतेंगे सज्जन;
सीधी कपिला होगी दुधार।
अपने ही पैरों ठहरेंगे;
अपनी ही गरजों घहरेंगे;
अपनी ही बूँदों छहरेंगे;
अपनी ही रिमझिम तू-तुकार।
छूटेगी जग की ठग-लीला;
होंगी आँखें अन्तःशीला;
होगा न किसीका मुह पीला;
मिट जायगा लेना उधार।

[६६]

ऐंड़ ली, तिरछी छवि की मान।
तम के अपर पार सजधजकर
आया ज्योतिर्यान।
हाथ मिलाकर साथ खिलाकर
देह हिलाकर स्नेह दिलाकर
बँध रहने के खुले हृदय से
उतरे सहज अजान।
छिपकर चलते - पग कपकपकर
जगते लोग रहे झपझपकर;
व्यर्थ गये अबतक के उनके
जितने भरे उठान।

[७२]

सहज चाल चलो उधर।
छिपा हुआ जाय उधर।

चाँदी की हँसी हँसे जो, अपने आप फँसे,
बन्द - बन्द खुले, गँसे बन्धन के छन्द सुघर।
खुली हवा में जीवन वहे सदा निर्वेदन;
भरें सुमन-फल वन-वन; देश और हो सुन्दर।
एक - एक प्राण चलें जहाँ चराचर न मलें
हाथ, आँख से न छलें, मिले अनाकामित वर।

लू के झोंकों झुलसे हुए थे जो,
भरा दौंगरा उन्हींपर गिरा।
उन्हीं बीजों के नये पर लगे,
उन्हीं पौधों से नया रस झिरा।
उन्हीं खेतों पर नये हल चले,
उन्हीं माथों पर नये बल पड़े,
उन्हीं पेड़ों पर नये फल फले,
जवानी फिरी जो पानी फिरा।
पुरवा हवा की नमी बढ़ी,
जुही के जहाँ की लड़ी कढ़ी,
सविता ने क्या कविता पढ़ी,
बदला है बादल से सिरा।
जग के अपावन धुल गये,
ढेले गड़नेवाले थे घुल गये,
समता के दृग दोनों तुल गये,
तपता गगन घन से घिरा।

आँख से आँख मिलाओ,
उनका डर छोड़ो।
पार करके नई दुनिया
अपना घर छोड़ो।
नोक से कांटा निकाला है
जहाँ भी देखा;
कांटे से नोक निकल जाय,
काम कर छोड़ो।
आँसू की धार बहाते रहे,
अच्छा ही किया;
धार के आँसू बहाकर
अपने पर छोड़ो।

बदलीं जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया।
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया।
यह टहनी से हवा की छेड़छाड़ थी, मगर
खिलकर सुगन्ध से किसीका दिल बदल गया।
ख़ामोश फ़तह पाने को रोका नहीं रुका,
मुश्किल मुकाम, ज़िन्दगी का जब सहल गया।
मैंने कला की पाटी ली है शेर के लिए,
दुनियां के गोलन्दाजों को देखा, दहल गया।

मिट्टी की माया छोड़ चुके
जो, वे अपना घट फोड़ चुके।

नभ की सुदूरता से ऊँचे
जीवन के क्षण अब हैं छूंछे,

आकर्षण के अभियानों के
गतिक्रम को जब वे तोड़ चुके।

देशों की पण्यवीथिका की
जिन लोगों ने बांधी राखी,

वे उस सुख से हटकर, रुककर
निश्छल अपने मुख मोड़ चुके।

जो रूप - मोह से हुआ दूर,
जो युद्ध जीतकर हुआ शूर,

उनकी मानवता से दानव
अपना जीवन-क्रम जोड़ चुके।

हँसते-हँसते वे चले गये,
उनके विरोध के छले गये,

संसृति की रक्षा के न रहे,
वे अपनी रेखा गोड़ चुके।

वही राह देखता हूँ, हँस - हँसकर;
आती है धूप, छाँह लस - लसकर
कितने आते हैं, सुघराई छहराते हैं;
खुले हुए भावों के झंडे फहराते हैं;
गली-गली गीत उन्हींके लहरे खाते हैं;
अपने बन जाते हैं बस-बसकर।
जड़ता तामस, संशय, भय, बाधा, अन्धकार,
दूर हुए दुर्दिन के दुःख; खुले बन्द द्वार;
जीवन के उतरे कर; आँखों को दिखा सार;
छुई बीन नये तार कस-कसकर।
त्याग तपा, व्रत की शिक्षा ली, संभले जनगण;
पीठ न दी अरि को, निःशरण किया मृत्यु-वरण;
इसी भाव से आया जीवन का सिन्धु-तरण;
निकले मानव गृह से फँस-फँसकर।

[८०]

बिना अमर हुए यहाँ काम न होगा।
बिना पसीना आये नाम न होगा।
मुक्ति के गुलाब न चटकेंगे;
बढ़-बढ़कर छन-छन अटकेंगे—
लोग सचाई को भटकेंगे,
धन के धारण का जब धाम न होगा।
चढ़ा राग पिनपिन होगा जब
तार क्षीण अनुदिन होगा तब,
मलिन मान अमलिन होगा जब
जनने को जनता का वाम न होगा।

साहस कभी न छोड़ा, आगे क़दम बढ़ाये।
पट्टी पढ़ी कब उनकी, झांसे में हम कब आये?
पानी पड़ा समय पर, पल्लव नवीन लहरे,
मौसम में पेड़ जितने फूले नहीं समाये।
महकें तरह-तरह की, भौंरे तरह-तरह के,
बौरे हुए विटप से लिपटे, वसन्त गाये।
कलरव-भरे खगों के आवास-नीड़ सोहे;
मन साधिकार मोहे, कितने वितान छाये।
जिनसे फला हुआ है यह बाग़ क़ौम का, हम;
हमसे मिले हुए वे आये, बसे, बसाये।
जो झुर्रियाँ पड़ी थीं गालों पर आफ़तों की
उनको मिटा दिया है, रस के अधर हँसाये।

[८२]

किसकी तलाश में हो इतने उतावले-से ?
दुनियां ने मुह चुराया सायास बावले से।
खींचे बग़ैर नभ से झरता नहीं शिशिर-कण;
तेल आंच जब न खाया निकला कब आँवले से ?

बहुतों ने राह तै की, सँभले न पैर फिर भी;
जैसा दिखा था पहले, देखा न कांवले से।
आया मज़ा कि लाखों आंखों से दम घुटा है,
पटली है बैठने को गोरे की सांवले से।

सारे दावपेच खुले पेचीदगी आने पर।
यार गिरफ़्तार हुआ ख़ून के बहाने पर।
छिपी हुई बात खुली, जो न गये, जान गये,
आये, पीटा किये सिर, लाख-लाख पाने पर।
बेबसी के परदे पे खुला ज़माने का रङ्ग,
लोगों मे प्रसिद्ध वही लापता है, थाने पर।
भाप से जो पानी उड़ा, बादलों में बरसा है,
आदमी का खोया हुआ रखा मालख़ाने पर।
इतना ही रहे अयां, कहां तक हो और बयां,
शाप को भी आना पड़ा पापके न जाने पर।

[८२]

किसकी तलाश में हो इतने उतावले-से ?
दुनियां ने मुह चुराया सायास बावले से।
खींचे बग़ैर नभ से झरता नहीं शिशिर-कण;
तेल आंच जब न खाया निकला कब आँवले से ?
बहुतों ने राह तै की, सँभले न पैर फिर भी;
जैसा दिखा था पहले, देखा न कांवले से।
आया मज़ा कि लाखों आंखों से दम घुटा है,
पटली है बैठने को गोरे की सांवले से।

अगर समस्त - पर्दों का किसीको डर होता,
तो हाथ - पैरों वाला भी न कहीं सर होता।
कहाँ रहा है कौन ख़बर ले आने के लिए
न घर होता, न नभ होता, न क़बूतर होता।
कली न खिलती समीरण से खेलने के लिए,
न मन्द गन्ध से कलेजा ताज़ा - तर होता।
चढ़े हुए जन ऐसे जग से न रूठे होते,
न हाथ बढ़ते, न गिरते, न आया वर होता।
होती अनहोनी एक बिगड़ी बात बन जाती,
जवानी चढ़ती, आँखों से उतरता कर होता।

[८५]

माया की गोद, खेलता है चराचर तेरा;
न लगा हाथ, कैसा भर गया सागर तेरा।
रच गये तलवे, हथेलियाँ और नाख़ून कैसे,
आप लाली सुहाई ऐसा महावर तेरा।
भटके दर-दर, जिन्होंने सीधा रास्ता छोड़ा;
बल से पकड़ा है, तभी छलका है साग़र तेरा।
उल्टे पैरों लौटे द्वैत छोड़ने के लिए,
देखी नगरी तेरी, रम गया नागर तेरा।

[८६]

यह जीने का संग्राम जो करते हुये चले।
पहले के रहे दाम जो भरते हुए चले।
दम लेता कौन वार होते ही रहे जहाँ,
जीते हुए भी लोभ से हरते हुए चले।
आया यही विचार कि यह कौन सज़ा है,
जो अमर हैं संसार में मरते हुए चले।
क़िस्सा सुनाने को हुए तो बोले, दरकिनार;
हम डूबे पारावार में तरते हुए चले।
ऐसा मिला है शाप कि ये बड़े आदमी
कहलाते हुए, आपसे डरते हुए चले।

मन हमारा मग्न दुख की
दुर्धरा में हो गया।
कुछ न था तब लग्न वह
विश्वम्भरा में हो गया।
इन्द्र के. अनुचर घनों ने,
प्रलय की, तो डूबकर
जन्म पाया जलधि में,
फिर अप्सरा में हो गया।
गीत गाये घुमड़कर
घन में मगर घातक बना
प्रथम अपना, मोह जब
मेघाम्बरा में हो गया।
कष्ट पाये बहुत यों
गमनागमन से, तब कहीं
ऋषि अगस्त्य बना, अलौकिक
निष्करा में हो गया।
विश्व को वैषयिकता से
सीख देने के लिए
देह छोड़ी स्नेह से
ज्योतिस्सरा में हो गया।

[८८]

समर करो जीवन में,
जन के लिए कभी
पीछे न रहो गए के मन हे विदेश को न वरो।
वढ़े हाथ रोको न लुटो रोटी के कारण
मारण तक लो अमर सदा स्मरगरल हे हरो।
मरो सत्य पर अविकल शर की तरह मारकर,
छल छाया से तरो, न
भय से तुम विदेश विचरो।

[८६]

तुम हो गतिवान जहाँ,
तुमको पृथ्वी पर जल,
फलदल, गोदुग्ध धवल,
मिले खेत, खान, धान।

तापस के वेश रहे
कहे कौन क्या देखे
योग से बही यमुना
अथवा गङ्गा, महान।

उगा दूसरा ही रवि
अब के कवि ने देखा,
बचने से चले हाथ,
साथ पड़ी छुटी बान।

रहे चुपचाप मन मारकर हाथ पर
हाथ रखकर; गई अपनी सही नाप।
विश्व की विकलता अनुपम शकुन्तला
रह गई, दिग्देश ऋषि का लगा शाप।
साहस गया, बदलते रहे दिवस-छन,
लग गया ग्रीष्म यह युग का बढ़ा ताप।
प्रशमन जहाँ अखिल चेतन सुरसराशि
पहुँची अकालतक मन की उड़ी भाप।

पग आंगन पर रखकर आई ।
पल्लव-पल्लव पर हरियाली फूटी, लहरी डाली-डाली,
बोली कोयल, कलि की प्याली मधु भरकर तरु पर उफनाई ।
झोंके पुरवाई के लगते, बादल के दल नभ पर भगते,
कितने मन सो-सोकर जगते, नयनों में भावुकता छाई ।
लहरें सरसी पर उठ-उठकर गिरती हैं सुन्दर से सुन्दर,
हिलते हैं सुख से इन्दीवर, घाटों पर बढ़ आई काई
घर के जन हुए प्रसन्न-वदन, अतिशय सुख से छलके लोच
प्रिय की वाणी का आमन्त्रण लेकर जैसे ध्वनि सरसाई

देखा

[९२]

उन्हें न देखूंगा जीवन में।
तुम्हीं मिले, भरा रहे मन में।
जग के कामों में,
राहों में, ग्रामों में,
झोपड़ियों में या धवल धामों में
तुम्हीं बँधी-मूठोंवाले जन में।
गली-गली हाथ पसारे
फिरते हैं जो मारे-मारे
भिन्न-भिन्न भाव के किनारे,
तुम्हारे न हुए कभी घन में।
धूल जहाँ सोने की,
गई बात रोने की,
खुली ज़िन्दगी सुख होने की,
तनुता बढ़कर आई तन में।

[९३]

खुल गया दिन खुली रात,
विरह की बात गई अब।

रूप खिले मिले अधर कली के,
नयनों की बरसात गई अब।

सागर की उठती हैं हिलोरें,
नयनों की बढ़ जाती हैं कोरें,

भवरों-भरी छूटती हैं मरोरें,
पहले की पीली गात गई अब।

उनके नयनों से जो लुटे हैं,
आज उन्हींके हाथ उठे हैं;

कैसे नये-नये तीर छूटे हैं,
मौत की गोंठिल घात गई अब।

[६४]

अहरह तुम्हारे न जो प्राण, हारे।
धूल उन पर पड़ी,
गई सुख की घड़ी,
टूटी सजी कड़ी, छूटे सहारे।
रंग उनका उड़ा,
कलुष आकार जुड़ा,
सत्य से जी मुड़ा, मन रहे मारे।
रह गये वे दास
निष्फल निराश्वास,
रुक गया उच्छ्वास तट के किनारे।

कैसी यह हवा चली। तरु-तरु की खिली कली।
लगने को कामों में जगे लोग धामों में,
ग्रामों ग्रामों में चल पड़े बड़े-बड़े बली।
जान गये जान गई, खुली जो लगी क़लई,
उठे मसुरिया, बलई, भगे बड़े-बड़े छली।
अपना जीवन आया, गई पराई छाया,
फूटी काया - काया, गूंज उठी गली-गली।